द्वितीय सेमेस्टर, हिन्दी (एम.ए.)

हिन्दी साहित्य का इतिहास : आधुनिक काल (भारतेन्दु युग से अब तक)

PAPER C.C. – 5

आत्मकथा : एक सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य में आत्मकथा एक महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा लिखना समाज में अपने अनुभव से दूसरों को लाभान्वित करना है। इसकी कथावस्तु आत्मकथाकार के जीवन के सुख–दुख भोगे हुए क्षणों एवं जीवन के तमाम गूढ़ रहस्यों पर आधारित होती है। अपने जीवन के क्रमिक विकास, जीवनानुभूतियों एवं अपनी स्मृतियों से टकराते हुए विभिन्न पक्षों को वह आत्मकथा में प्रस्तुत करता है। आत्मकथा की अनिवार्य शर्त–ईमानदार अभिव्यक्ति और तटस्थता है आत्मकथा लेखन के संदर्भ में चंद्रकिरण सौनरेक्सा का यह कथन बहुत प्रासांगिक है–"जीवन यात्रा (आत्मकथा) तभी समाज के लिए उपयोगी होगी जब उस यात्रा कथा में पाठक को समाज या युग या मनुष्य का वर्णन ससमय और वास्तविक रूप से प्रतिबिंबित मिले। उसे पढ़कर पाठक उन बुराइयों के प्रति सचेत हो जो समाज को पिछड़ापन देती हैं।" अतः लेखक को को तटस्थापूर्वक ईमानदारी के साथ अपने जीवन साक्ष्यों को आत्म–प्रदर्शन तक सीमित न रहकर आत्मनिरीक्षण एवं आत्मविश्लेषण के रूप मे सामने लाए।

आत्मकथा एक ऐसी विधा है जिसमें वास्तव जीवन का ही चित्रण अनिवार्य होता है। जिस तरह मनुष्य की जिंदगी का कोई निश्चित ढाँचा पहले से ही तय नहीं होता। उसी तरह आत्मकथा भी किसी एक शिल्प में नहीं हो सकता। जीवन से सीधे संबंधित होने के कारण आत्मकथा किसी एक विन्यास के बंधन स्वीकार नहीं करती। इसलिए आत्मकथा लेखन में लेखक को अन्य विधाओं से ज्यादा इसमें घूट होती है। आत्मकथा कोई भी लिख सकता है और कैसे भी वह कही जा सकती है। आत्मकथा इसी अर्थ में सबसे अधिक लोकतांत्रिक विधा है।

आत्मकथा का उद्‌भव और विकास आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग में नवजागरण के फलस्वरूप गद्य साहित्य के विकास को बल मिला। उनमें से अनेक परिस्थितियों ने आत्मकथा विकास को बल दिया। वस्तुतः भारतीय परंपरा में आत्मप्रदर्शन को प्रशंसनीय नहीं मानी जाती थी। इसी कारण संस्कृत, पालि, प्राकृत या प्राचीन अपभ्रंश साहित्य में आत्म–परिचय के नाम पर छोटे–छोटे आत्मकथन, उद्धरण मात्र मिलती हैं। जैसे :

- कवि माघ ने 'शिशुपाल वध' नामक रचना में अपना तथा अपने पितामह का परिचय देते हुए अपने वंश–गौरव को प्रस्तुत किया है।
- पालि साहित्य में थेर गाथाएँ या मेरी गाथाएँ में विक्षुणियों के छंदोबद्ध आत्मचरित्र हैं।
- अपभ्रंश के महाकवि स्वयंभू द्वारा रचित 'पउमचिरउ' की भूमिका में अपने शारीरिक व्यक्तित्व तथा माता–पिता का परिचय देते हैं।
- आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल में भी आत्मकथा लिखने का प्रचलन नहीं रहा। विभिन्न कवियों के ग्रंथों में अपना नाम, कुल, गोत्र आदि देने की अस्पष्ट प्रवृति मिलती है।
- भारतेंदु तथा द्विवेदी युग तक आते–आते साहित्यकारों का आत्म परिचय का संकोच कम होता गया। भारतेंदु (कुछ आप बीती कुछ जगबीती), 1876 ई० प्रतापनारायण मिश्र (अपूर्ण), राधाचरण गोस्वामी (बारह पृष्ठीय) आदि ने अत्यंत संक्षिप्त आत्मकथाएँ लिखी। 1901 ई० में अंबिकादत्त व्यास ने 'निज वृत्तांत' लिखी।

बनारसीदास जैन कृत 'अर्थकथानक' (1641 ई०) से हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन प्रारंभ होकर भी न के बराबर रहा, क्योंकि 'अर्थकथानक' के दो

सौ अड़तीस वर्षों बाद सन् 1879 ई० में स्वामी दयानंद सरस्वती की आत्मकथा 'आत्मचरित्र' लिखी गई। यह आधुनिक युग के नवजागरण के फलस्वरूप साहित्य और समाज में हुए वैचारिक परिवर्तन तथा समष्टि के स्थान पर व्यष्टि की प्रतिष्ठा का परिणाम था। सन् 1932 में प्रेमचंद के हंस के आत्मकथा विशेषांक ने भी इस विधा को और प्रोत्साहित किया। इसमें लगभग 21 आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई थी।

एक लंबे अंतराल के बाद आत्मकथा–लेखन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास बाबू श्यामसुन्दर दास ने किया। इन्होनें 'मेरी आत्मकहानी' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखी। इस आत्मकथा का ऐतिहासिक महत्व है। सन् 1941 में गुलाबराय ने 'मेरी अस्फलताएँ' शीर्षक से आत्मकथा लिखी। इसके बाद हरिभाऊ उपाध्याय की आत्मकथा 'साधना के पथ पर' (1946 ई०) शीर्षक से प्रकाशित हुई। सन् 1946 में वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह' शीर्षक से प्रकाशित हुई। सन् 1946 ई० में ही अपनी यायावरी वृत्ति के लिए प्रसिद्ध पंडित राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' शीर्षक से पाँच खंडों में प्रकाशित हुई। देवेन्द्र सत्यार्थी की आत्मकथा दो खंडों में 'चाँद सूरज के वीरन' (1952 ई०) तथा 'नील यक्षिणी' (1965 ई०) शीर्षक से प्रकाशित हुई। सन् 1956 में चतुरसेन शास्त्री की आत्मकथा 'यादों की परछाइयां' शीर्षक से प्रकाशित हुई। इस दौर की सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा रही यशपाल की 'सिंहावलोकन'। जो तीन खंडों में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में तत्कालीन राजनीतिक परिवेश उभरकर आया है।

सन् 1958 में सेठ गोविन्ददास की आत्मकथा 'आत्मनिरीक्षण' शीर्षक से प्रकाशित हुई। सन् 1960 में दो महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई पहली सुमित्रानन्दन पंत की 'साठ वर्ष एक रेखांकन' और दूसरी पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर'। देवराज उपाध्याय की आत्मकथा दो खंडों में 'बचपन के दो दिन (1958)' तथा 'यौवन के द्वार पर' (1970) शीर्षक से प्रकाशित हुई। इसके बाद

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की आत्मकथा 'मेरी अपनी कथा' शीर्षक से प्रकाशित हुई। सन् 1960 के बाद जो आत्मकथा काफी चर्चित रही वह है–हरिवंश राय बच्चन की चार खण्डों में प्रकाशित 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970), 'बसेरे से दूर' (1977) और 'दशद्वार से सोपान तक' (1985)। इन चारों आत्मकथाओं में स्थान–स्थान पर उनके साहितय, काव्य–सृजन से संबंधित विचार अभिव्यक्त हुए हैं। इन्होनें हिन्दी की आत्मकथा के भंडार को समृद्ध करके इस विधा को नए आयाम दिए। हिन्दी आत्मकथाओं की परंपरा में प्रसिद्ध अभिनेता और प्रगतिशील विचारक बलराज साहनी द्वारा लिखित 'मेरी फिल्मी आत्मकथा', डॉ० रामविलास शर्मा कृत 'घर की बात' (1983), शिव पूजन सहाय की 'मेरा जीवन' (1985), फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'आत्म परिचय' (1988), रामदरश मिश्र की 'सहचर है समय' (1991) उल्लेखनीय आत्मकथाएँ हैं जिन्होनें हिंदी की आत्मकथा विधा लेखन की आधार भूमि तैयार करने में योगदान किया है।

स्त्री आत्मकथा के उद्भव की पृष्ठभूमि में बदलते समय के साथ स्त्री का अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति जागरूकता पैदा हो जाने को भी अहम तथ्य माना जा सकता है। स्त्री में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना पैदा होने से जो लेखन किया गया है उससे पुरूष सत्ता की वास्तविकताएँ सामने आई हैं। इस दौर में जो प्रमुख आत्मकथाएँ रहीं, उनमें चंद्रकिरण सौन रेक्सा की "पिंजड़े की मैना", प्रभा खेतान की "अन्य से अनन्या", मैत्रेयी पुष्पा की "गुड़िया भीतर गुड़िया", रमणिका गुप्त के "हादसे", मन्नू भंडारी की "एक सच ये भी", कौशल्या बैसंत्री की "दोहरा अभिशाप", महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ रहीं जिन्होनें जीवन का एक नया दृष्टिकोण सामने लाया।

दलित आत्मकथा में दलित जीवन की गहरी छानबीन की गई है। दलित समाज की जद्दोदजहद और अस्मिता की पहचान को अभिव्यक्ति मिली है। दलित

आत्मकथाओं ने एक विशिष्ट स्थान बनाया है, जो मात्र लेखन की निजी पीड़ा नहीं, बल्कि समूचे दलित समाज की व्यथा–कथा बन गई हैं। दलित आत्मकथा के मूल में अस्मिता की तलाश महत्वपूर्ण होती है।

दलित आत्मकथाकारों ने दलित समुदाय के शोषण, अपमान, अवहेलना, तिरस्कार आदि को लिखकर पूरे समाज को यह बता दिया कि हमारा जीवन जानने के लिए किसी रची हुई कहानी या आख्यान की नहीं, स्वयं हमारे जीवन को देखना जरूरी है। जो प्रमुख आत्मकथाएँ हिंदी दलित साहित्य में है उनमें ओम प्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन', मोहन नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन', कौशल्या बेसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' आदि मुख्य हैं। ये आत्मकथाएँ वेदना के गर्भ से जन्मी और पारंपरिक, सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती है। इन आत्मकथाओं के माध्यम से लेखकों ने समाज व्यवस्थाओं को झकझोर कर रख दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में आत्मकथा विकास परंपरा को दिखाते हुए प्रमुख साहित्यकारों की आत्मकथाओं का ही उल्लेख हुआ है। आत्मकथा में समकालीन राजनैतिक, सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति अनिवार्य है, आत्मकथा की विशेषता, इस बात में निहित होती है कि उसे पढ़ते समय आत्मकथाकार का पूरा युगीन परिवेश पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाए।

प्रस्तुतकर्ता

डॉ० कंचन कुमारी
अतिथि शिक्षक
हिन्दी विभाग,
पटनां विश्वविद्यालय, पटना
E-mail Id : kanchanroycool@gmail.com